जीवनमें संयमका महत्त्व

मानव-जीवनको सुखमय बनानेके लिए संयमकी बहुत आवश्यकता है। बिना संयमके इस दुःखमय संसारसे मुक्ति नहीं मिल सकती। एक तो संसार स्वयं दुःखमय है। दूसरे, हम भी विविध वासनाओंकी सृष्टि करके जीवनको भयानक गर्तमें डाल देते हैं। हमारी वासनायें—इच्छायें दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही चली जाती हैं। ज्यों ही एक इच्छाकी पूर्ति होती है त्यों ही दूसरी इच्छा-वासना आ खड़ी होती है। इस प्रकार एकके बाद दूसरी और दूसरीके बाद तीसरी, तीसरीके बाद चौथी आदि वासनाओंका तांता लगा ही रहता है। भले ही जीवनका अन्त हो जाय, पर वासनाओंका अन्त नहीं होता। अतएव कहना होगा कि वासनायें अपरिमित हैं, उनकी पूर्ति होना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है, क्योंकि उनके विषय परिमित हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि "दुनियाकी सारी चीजें मुझे ही मिल जायें" तब यह कैसे सम्भव है कि अनन्तानन्त जीव-राशिकी इच्छायें-वासनायें परिमित वस्तुओंसे पूर्ण हो जायें। एक विद्वान्का यह वचन प्रत्येक मानवको अपने हृत्पटलपर अंकित कर लेना चाहिये—

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता॥

—आत्मानुशासन।

अर्थात्—अये! दुःखागार संसार-निमग्न प्राणियो! तुम्हारी वासनायें-इच्छायें बड़े भारी गड्ढेके समान हैं और यह दृश्यमान विश्व उसमें अणुके बराबर है तब उनकी पूर्ति अणु-विश्वसे कैसे हो सकती है? अतः तुमको विषयोंमें अभिलाषा करना व्यर्थ है। यह भी ध्रुव सत्य समझो कि जिसकी अभिलाषा की जावे, वह प्रायः मिलती भी नहीं है। क्या यह नहीं सुना है कि "बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न चून"।

जीवनमें जितने भी रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि दुःख भोगने पड़ते हैं, उन सबका मूल कारण वासना एवं असंयम ही है। यदि वासना-इच्छा न हो तो दुःख कभी हो ही नहीं सकता, यह बिलकुल यथार्थ है। इन्द्रिय और मनकी विषयोंमें स्वच्छन्द प्रवृत्तिका नाम ही वासना है। इसीको इन्द्रिय-असंयम कहते हैं।

मनसश्चेन्द्रियाणां च यत्स्वस्वार्थे प्रवर्तनम्।
यदृच्छयेव तत्तज्ज्ञा इन्द्रियासंयमं विदुः॥

अर्थात्—मन और इन्द्रियोंके अपने-अपने विषयमें स्वच्छन्द प्रवर्तनको विद्वान् इन्द्रियासंयम कहते हैं। सचमुचमें मनुष्य इसके चंगुलमें फँसकर जघन्य-से-जघन्य कुकृत्योंके करनेमें संकुचित नहीं होता। उसकी तीव्र वासना एवं स्वार्थलोलुपता उसके सच्चे स्वरूपपर कुठाराघात करती है। इतना ही नहीं, उसे महान दुःखोंके गर्तमें पटक देती है। अतः कहना होगा कि यह इन्द्रियासंयम अपर नाम वासना अनन्त संसारका कारण है। इस लिये यदि हम अपने जीवनको सुखी एवं शान्तिमय बनाना चाहते हैं, तो हमारा कर्त्तव्य है कि इस विषय-पिशाची वासनाका मूलोच्छेद करें। यह निश्चित है कि विषय नियत समयके लिये ही प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होंगे, अपना समय पूरा करके चले जायेंगे। इससे हमें महान् दुःख होगा, आकुलता होगी, असंतोष पैदा होगा। यदि हम इनको स्वयमेव छोड़ देंगे तो हमें सन्तोष-सुख मिलेगा और दुःखोंका शिकार नहीं होना पड़ेगा। कहा है :—

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः,
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनंतं विदधति॥

अतः विषयवासनाका उच्छेद करना परमावश्यक है। 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी', 'जड़ ही नष्ट हो गई तो अंकुर कैसा', 'स्रोत ही सुखा दिया जाय तो प्रवाह कैसा'? हमारे मनमें वासनायें ही पैदा न होंगी तो दुःख कहाँसे होगा? वासनाके निवृत्त हो जानेपर जो उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करने पड़ते थे, जो विकलता उठानी पड़ती थी, उन सबका अन्त हो जायेगा। फिर किसी भी बाह्य चीजकी अभिलांषा न होगी। अपने अन्तर्जगतमें छिपी चीजें (अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुखादि) प्रकट हो जावेंगी। आत्माकी ये ही स्वाभाविक एवं वास्तविक विभूति हैं। जब तक आकुलता रहती है तभी तक अशान्ति और दुःखका तांता है। जब आकुलता न रहेगी तब निराकुलतात्मक सुख एवं शान्तिकी पूर्ण व्यक्ति हो जायगी। ऐसी ही अवस्थाका नाम मोक्ष है। पं० दौलतरामजीके ये शब्द सदा स्मरणीय हैं—

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमांहि न, तातें शिवमग लाग्यो चहिये॥

यदि हम विषय-वासनाके अन्तस्थलमें घुसें तो कहना होगा कि विषय-वासना ही संसार है और उसकी विमुक्ति ही मुक्ति है। "बद्धो हि को यो विषयानुरागी, का वा विमुक्तिः विषये विरक्तः।" अर्थात् बद्ध कौन है? जो विषयोंमें आसक्त है। मुक्ति क्या है? विषयोंमें विरक्तता। वही मुक्त है जो विषयोंमें विरक्त है, उनमें आसक्त नहीं है। सम्राट् भरत षट्खंड विभूतिका उपभोग करते हुए भी दीक्षा लेनेके बाद अन्तर्मुहूर्तमें केवली हो गये। अतः निश्चित है कि आसक्ति ही बंधका कारण है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिकी क्रियायें एक होने पर भी मिथ्यादृष्टिकी क्रियायें बंधका कारण हैं, सम्यग्दृष्टिकी नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जो क्रियायें करता है आसक्त (तन्मय) होकर करता है, सम्यग्दृष्टि नहीं। वह तो केवल पदस्थ कर्त्तव्य समझ कर करता है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते॥

—समयसारकलश।

अब विचारना है कि वासनाका उच्छेद कैसे हो सकता है, क्योंकि मनसे इच्छाओंका हटाना हंसी-खेल नहीं है, टेढ़ी खीर है। अपने-अपने विषयोंके प्रति गमन करनेवाली इन्द्रियों और मनको उनसे हटाना, उनको काबूमें करना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार जगत्को विध्वंस करनेवाले उन्मन्त गजको वशमें करना है। किन्तु विशेषज्ञोंने जहाँ वासना-निवृत्तिका उपदेश दिया है वहीं मन और इन्द्रियोंको स्वच्छन्द न होने देनेका सुगम साधन भी बतलाया है। ज्यों ही इन्द्रियों और मनपर आत्माका पूर्ण आधिपत्य होता जायगा त्यों ही वासनाओंकी निवृत्ति होती चली जायगी। मनको काबूमें कर लेनेपर इन्द्रियाँ अपने आप काबूमें हो जावेंगी। मनको काबूमें करनेका सरल उपाय यही है कि मनमें बुरे विचार कभी भी उत्पन्न न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने दें। अच्छे विचारोंको पैदा करें। ज्यों ही मन बुरे विचारोंमें गोता लगावे, त्यों ही विवेकांकुशसे लाभ लें। और उस समय इस प्रकार विचार करें—"धिक् छिः तुझे ऐसे नीचातिनीच अकृत्योंमें प्रवृत्त होते शर्म आनी चाहिये। लोकमें जो तेरी थोड़ी-बहुत प्रतिष्ठा है वह सारी मिट्टीमें मिल जायगी, फिर ऊँचा सिर करके नहीं चल सकेगा। परभवमें दुर्गतियोंके अनेक असह्य दुखोंका सामना करना पड़ेगा, उनके शिकंजेमें पड़े बिना नहीं रह सकेगा। रे मन! चेत! जरा चेत!! इन बीभत्स अनर्थोंमें मत जा, अपने स्वाभाविक स्वरूपको पहचान"। इस प्रकार मनसे बुरे विचारोंको अपना (आत्माका) शत्रु समझकर हटाएँ और आत्माको अधःपतनसे रक्षित करें। महात्मा गाँधीने इन जघन्य मनोवृत्तियोंके दमन करनेके लिये एक बार महाभारतका सुन्दर चित्र खींचकर बतलाया था कि जब मेरे मनमें बुरे विचार उत्पन्न होते हैं तब मैं उसका इस प्रकार दमन करता हूँ—

"शरीरको तो कुरुक्षेत्र समझता और आत्माको अर्जुन, बुरे विचारोंको कौरव और अच्छे विचारोंको पाण्डव, तथा शुद्ध ज्ञानको कृष्ण। जब बुरे और अच्छे विचारोंमें संघर्ष होता है तब बुरे विचार अच्छे विचारोंको धर दबाते हैं तब फौरन शुद्ध ज्ञानकी वृत्ति उदित होकर (श्रीकृष्ण) आत्मा (अर्जुन) को सचेत कर कहती है (स्वकर्तव्योपदेश देती है) कि हे आत्मन् (अर्जुन) तेरी विरक्ति (मौन) का समय नहीं है, यह तेरे कर्तव्य पालनका समय है। बुरे विचारों (कौरवों) को तू अपना दुश्मन समझ, उनको अब भाई मत समझो। जब वे (बुरे विचार) तेरे निर्दोष भाइयों (अच्छे विचारों) पर अत्याचारोंके करनेपर उतारू हो गये हैं तब भ्रातृमोह कैसा? यह असामयिक वैराग्य कैसा? अतः अविलम्ब तुम कुरुक्षेत्र (शरीर) के मैदानमें जमकर दुश्मन कौरवों (बुरे विचारों) का संहार करो और अपने भाई—पाण्डवों (अच्छे विचारों) की रक्षा करके विजय प्राप्त करो एवं संसारके सामने नीतिका आदर्श पेश करो। इस प्रकार बुरे विचारोंका दमन किया करता हूँ।" यह महात्मा गांधीने मनको वशमें करनेके लिये कितना अच्छा चित्र खींचा है।

इस प्रकार मनमें दो प्रकारकी वृत्तियाँ (विचार) पैदा हुआ करती हैं—अच्छी और बुरी। जब मनमें बुरे विचार पैदा होते हैं तब मनरूपी राजा इन्द्रियरूपी सेनाको लेकर विषयरूपी युद्धस्थलमें आत्मारूपी शत्रुको पराजित कर गिरा देता है। देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

इंदिय-सेणा पसरइ मण-णरवइ-पेरिया ण संदेहो।
तम्हा मणसंजमणं खवएण य हवदि कायव्वं ॥५८॥

अर्थात् मननृपतिसे प्रेरित होकर इन्द्रियसेना विषयोंमें प्रवृत्त होती है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। अतः पहले मनोनृपतिको ही रोकना आवश्यक है—

मणणरवइणो मरणे मरंति सेणाइं इंदियमयाइं।
ताणं मरणेण पुणो मरंति णिस्सेसकम्माइं ॥६०॥
तेसिं मरणे मुक्खो मुक्खे पावेइ सासयं सुक्खं।
इंदियविसयविमुक्कं तम्हा मणमारणं कुणह ॥६१॥

अर्थात् मननृपतिके मर जानेपर इंद्रियसेना अपने आप मर जाती है अर्थात् फिर इन्द्रियाँ आत्माको विषयोंमें पतित नहीं कर सकतीं। जैसे जली हुई रस्सी बन्धनरूप अर्थक्रिया नहीं कर सकती। इन्द्रियोंके मर जानेपर निःशेष कर्मोंका नाश हो जाता है। कर्मशत्रुओंके नाश हो जानेपर आत्माको अपना साम्राज्य (मोक्ष) मिल जाता है और उसके मिल जानेपर आत्मिक—स्वाभाविक सम्पत्ति—अतीन्द्रिय शाश्वत सुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त हो जाता है। अतः मनकी लिप्साओंको भस्मसात् कर देना चाहिये। एवं मनोव्यापारके नष्ट हो जानेपर इन्द्रियाँ फिर विषयोंमें प्रवृत्त नहीं हो सकतीं। "मूलाऽभावे कुतः शाखा" समूल वृक्षको यदि नष्ट कर दिया जाय तो अंकुर, पल्लव, शाखा आदि कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। यथा—

णट्ठे मणवावारे विसएसु ण जंति इंदिया सव्वे।
छिण्णे तरुस्स मूले कत्तो पुण पल्लवा हुंति ॥६९॥

—आराधनासार।

यह भी निश्चित है कि मन ही बन्ध करता है और मन ही मोक्ष करता है—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।" देवसेनाचार्य पुनः कहते हैं :—

मणमित्ते वावारे णट्ठुप्पण्णे य वे गुणा हुंति।
णट्ठे आसवरोहो उप्पण्णे कम्मबन्धो य ॥७०॥

अर्थात् मनोवृत्तिके अवरोध और उसकी उत्पत्तिसे दो बातें होती हैं। अवरोधसे कर्मोंका आस्रव रुकता है और उसकी उत्पत्तिसे कर्मोंका बंध होता है। तब क्यों न हम अपनी पूरी शक्ति उसके रोकनेमें लगावें।

मन मतंग हाथी भयो ज्ञान भयो असवार।
पग पग पै अंकुश लगे कस कुपन्थ चल जाय॥
मन मतंग माने नहीं जौ लों धका न खाय।

जैनदर्शनमें मनोनिग्रहसे अपरिमित लाभ बताये हैं। यहाँ तक कि उससे केवलज्ञान—पूर्ण ज्ञान तक होता है और आत्मा परमात्मा हो जाता है, अल्पज्ञ सर्वज्ञ हो जाता है। देवसेनने कहा है—

खीणे मणसंचारे तुट्टे तह आसवे य दुवियप्पे।
गलइ पुराणं कम्मं केवलणाणं पयासेइ ॥७३॥
उव्वसिए मणगेहे णट्ठे णीसेसकरणवावारे।
विप्फुरिये ससहावे अप्पा परमप्पओ हवइ ॥८५॥

अर्थ—मनके व्यापारके रुक जाने पर दोनों प्रकारका आस्रव—पुण्यास्रव एवं पापास्रव रुक जाता है और पुराने कर्मोंका नाश हो जाता है तथा केवलज्ञान प्रकट हो जाता है और आत्मा परमात्मा हो जाता है। फिर संसारके दुःखोंमें नहीं भटकना पड़ता, क्योंकि कर्मबीज सर्वथा नाश हो जाता है। अतः सुखार्थियोंको संयमसे जीवन बिताना चाहिये। असंयमसे जो हानियां उठानी पड़ती हैं वे प्रत्येक संसारी मनुष्यसे छिपी नहीं हैं। संयमके विषयमें संसारके आधुनिक महापुरुषोंके मन्तव्य देखें—★

डॉ० सर ब्लेड कहते हैं कि—"असंयमके दुष्परिणाम तो निर्विवाद और सर्वविदित है परन्तु संयमके दुष्परिणाम तो केवल कपोलकल्पित हैं। उपर्युक्त दो बातोंमें पहली बातका अनुमोदन तो बड़े-बड़े विद्वान् करते हैं, लेकिन दूसरी बातको सिद्ध करने वाला अभी तक कोई मिला ही नहीं है"।

सर जेम्स प्रैगटकी धारणा है कि—"जिस प्रकार पवित्रतासे आत्माको क्षति नहीं पहुँचती उसी प्रकार शरीरको भी कोई हानि नहीं पहुँचती—इन्द्रियसंयम सबसे उत्तम आचरण है।

डॉ० वेरियर कहते हैं कि—पूर्ण संयमके बारेमें यह कल्पना कि वह खतरनाक है, बिलकुल गलत खयाल है और इसे दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

★ विद्वानोंके ये मत लेखकने महात्मा गांधीरचित "अनीतिकी राह" पुस्तकसे उद्धृत किये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर एंडरू क्लार्क कहते हैं कि—"संयमसे कोई नुकसान नहीं पहुँचता और न वह मनुष्यके स्वाभाविक विकासको रोकता है, वरन् वह तो बलको बढ़ाता है और तीव्र करता है। असंयमसे आत्मशासन जाता रहता है, आलस्य बढ़ता है और शरीर ऐसे रोगोंका शिकार बन जाता है जो पुश्त दरपुश्त असर करते चले जाते हैं।"

महाशय गैबरियल सीलेस कहते हैं कि—"हम बार-बार कहते फिरते हैं कि हमें स्वतन्त्रता चाहिये, हम स्वतन्त्र होंगे। परन्तु हम नहीं जानते कि स्वतन्त्रता कर्त्तव्यकी कैसी कठोर बेड़ी है। हमें यह नहीं मालूम कि हमारी इस नकली स्वतन्त्रताका अर्थ इन्द्रियोंकी गुलामी है जिससे हमें न तो कभी कष्टका अनुभव होता है और न हम कभी इसलिये उसका विरोध ही करते हैं।"

ब्यूरोका यह वाक्य प्रत्येक मनुष्यको अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिये कि "भविष्य संयमी लोगोंके ही हाथोंमें है।"

महात्मा गांधी जो इन्द्रियसंयमके जागरूक प्रहरी थे—स्वयं क्या कहते हैं, सुनिये—

"संयत और धार्मिक जीवनमें ही अभीष्ट संयमके पालनकी काफी शक्ति है। संयत जीवन बितानेमें ही ईश्वर-प्राप्तिकी उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। मैं यह दावा करता हूँ कि यदि विचार और विवेकसे काम लिया जाय तो विना ज्यादा कठिनाईके संयमका पालन सर्वथा सम्भव है। वह गाँधी, जो किसी जमानेमें कामके अभिभूत था, आज अगर अपनी पत्नीके साथ भाई या मित्रके समान रहता है और संसारकी सर्व श्रेष्ठ सुन्दरियोंको भी बहिन या बेटीके रूपमें देख सकता है, तो नीच-से-नीच और पतित मनुष्यके लिये भी आशा है? मनुष्य पशु नहीं है। पशुयोनिमें अनगिनत जन्म लेनेके बाद उस पदपर आया है। उसका जन्म सिर ऊँचा करके चलनेको हुआ है, लेट कर या पेटके बल रेंगनेको नहीं। पुरुषत्वसे पाशविकता उतनी ही दूर है, जितना आत्मासे शरीर।"

ब्यूरोके वाक्य ये हैं—"संयममें शांति है और असंयम तो अशान्तिरूप महाशत्रुका घर है। असंयमीको अपनी इन्द्रियोंकी बड़ी बुरी गुलामी करनी पड़ती है। मनुष्यका जीवन मिट्टीके बर्तनके समान है जिसमें तुम यदि पहली बूँदमें ही मैला छोड़ देते हो तो फिर लाख पानी डालते रहो, सभी गन्दा होता जायगा। यदि तुम्हारा मन सदोष है तो तुम उसकी बातें सुनोगे और उसका बल बढ़ाओगे ध्यान रक्खो कि प्रत्येक काम-पूर्ति तुम्हारी गुलामीकी जंजीरकी एक नई कड़ी बन जायगी, फिर तो इसे तोड़नेकी तुम्हें शक्ति ही न रहेगी और इस प्रकार तुम्हारा जीवन एक अज्ञानजनित अभ्यासके कारण नष्ट हो जायगा। सबसे अच्छा उपाय तो ऊँचे विचारोंको पैदा करना और सभी कामोंमें संयमसे काम लेनेमें ही है'।

अन्तमें संयम और असंयमके परिणाकोंको बतला कर लेखको समाप्त करता हूँ।

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

अर्थात् इन्द्रियोंका असंयम अनेक आपदाओं-रोगों आदिका मार्ग है और उनपर विजय पाना सम्पत्तियों-स्वास्थ्यादिका मार्ग है। इनमें जो मार्ग चुनना चाहें, चुनें और चलें, आपकी इच्छा है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org